इकाई 26 जनजातियाँ

इकाई की रूपरेखा

26.0 उद्देश्य

26.1 प्रस्तावना

26.2 जनजातीय समाज और अर्थव्यवस्था

26.3 भारत में सामाजिक एवं राजनीतिक आन्दोलन

26.3.1 उपनिवेशपूर्व काल

26.3.2 उपनिवेशोपरांत काल

26.4 जनजातीय आन्दोलनों के लक्षण और परिणाम

26.5 सारांश

26.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें व लेख

26.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

26.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप पाएँगे भारत ने सामाजिक व राजनीतिक आन्दोलनों में से एक, यथा, जनजातीय आन्दोलन। इस इकाई को पढ़ लेने के बाद आप इस योग्य होंगे कि समझ सकें :

- भारत में जनजातियों का अर्थ व उनके अभिलक्षण;
- उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थितियाँ;
- उपनिवेशपूर्व और उपनिवेशोपरांत कालों में उनके आन्दोलन; और
- भारत में जनजातीय आन्दोलनों के कारण एवं परिणाम।

26.1 प्रस्तावना

जनजाति भारत में सभी समुदायों की कमोवेश पूर्ण व्याख्या करने को औपनिवेशिक अधिकारियों व नृजाति वर्णनकर्त्ताओं द्वारा 19वीं सदी में प्रचलित की गई एक औपनिवेशिक संकल्पना है। इसी शताब्दी के उत्तरार्ध में, जनजाति की संकल्पना जातियों से भिन्न के रूप में आदिम समूहों तक संकुचित हो गई। यह भारत सरकार अधिनियम, 1935 तथा भारतीय संविधान के तत्त्वावधान में ही था कि अनुसूचित जनजाति की नामावली पूर्णत: उद्गमित हुई। भारतीय संविधान जनजाति की कोई परिभाषा नहीं देता है। अनुसूचित जनजाति का द्योतन दो पहलू रखता है। यह पिछड़ेपन व निर्जनता के मानदण्डों द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ प्रशासकीय रूप से निर्धारित की जाती हैं। वनों में और पहाड़ों पर रहने वाले लोग। इन्हें आदिवासी – मूल निवासी, भी कहा जाता है। कई अन्य सामाजिक समूहों की ही भाँति इन जनजातीय लोगों ने अपनी शिकायतों के प्रतिकार हेतु सामाजिक व राजनीतिक आन्दोलन शुरू किए हैं।

दक्षिणी आंतर-निवासों को छोड़कर अधिकांश क्षेत्रों, उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र व द्वीपों, ने औपनिवेशिक एवं उपनिवेशोपरांत कालों में जनजातियों के अनेक आन्दोलन देखे हैं। उपनिवेशपूर्व काल में जनजातियों ने मराठाओं या राजपूतों की क्षेत्रीय शक्तियों के विरुद्ध उठ खड़े हुए। उन्होंने ज़मींदारों

व ग़ैर-जनजातीय प्रशासकों के खिलाफ़ प्रतिरोध किया। उपनिवेश काल के दौरान उन्होंने अपनी स्वायत्तता के लिए ब्रिटिशों के खिलाफ़ संघर्ष किया। केन्द्रीय भारत में बिरसा मुण्डा क्रांति इसका सर्वाधिक सुपरिचित उदाहरण है। धार्मिक विचारों के माध्यम से ग़ैर-जनजातीय सांस्कृतिक प्राधिकार के खिलाफ़ प्रतिरोध करते क्षेत्रीय-राजनीतिक आन्दोलन भी हुए।

26.2 जनजातीय समाज और अर्थव्यवस्था

बहरहाल, भारत में जनजाति आज उत्पादन की एकल प्रौद्योगिक-अर्थव्यवस्था पर जीवन-निर्वाह करती है। उनमें से अधिकांश भरण-पोषण के पाँच या उससे भी अधिक तरीकों के एक सम्मिलन पर जीवन-निर्वाह करते हैं। आदिम प्रौद्योगिकी, नामतः, आखेट, खाद्य-संग्रहण तथा झूम व समतल खेती उत्तर-पूर्व में उष्णकटिबन्धी वनों, पूर्वी व केन्द्रीय क्षेत्रों के भागों, नीलगिरी तथा अण्डमान द्वीपसमूह द्वारा घिरे भारी मानसून कटिबंध तक सीमित है। चारागाही अर्थव्यवस्था जो जनजातीय अर्थव्यवस्था के लगभग 10 प्रतिशत व निर्माण करती है, उप-हिमालयी क्षेत्रों के ऊँचाई वाले स्थानों, गुजरात व राजस्थान के शुष्क कटिबंधों में तथा नीलगिरी में एक छोटे-से आंतर-निवास में जीवनयापन करती है। जनजातीय कामगारों में से तीन-चौथाई से अधिक अर्थव्यवस्था के प्राथमिक क्षेत्र से जुड़े हैं, जिनमें से बहुसंख्य कृषि-श्रमिकों के बाद आए किसान हैं। उनमें से बड़ी संख्या में पशु-पालन, वन विद्या, मत्स्य उद्योग, आखेट आदि में, और निर्माण क्षेत्र, खनन व खदान-कार्य में कर्मचारियों के रूप में संलग्न हैं।

यद्यपि ग़ैर-जनजातियों के मुकाबले एक बड़े पैमाने पर जनजातीय समुदायों के बीच वस्तु-विनिमय पद्धति पायी जाती है, लगभग सम्पूर्ण जनजातीय अर्थव्यवस्था आज बाज़ारी शक्तियों के भँवर में है। जनजातीय समुदायों में पारम्परिक से नए व्यवसायों की ओर एक उल्लेखनीय विचलन रहा है। उदाहरणार्थ, आखेट व खाद्य-संग्रहण करने वाले अनेक समुदायों की संख्या घटी है क्योंकि जंगल ग़ायब हो गए हैं और वन्य-जीवन घट गया है। पारिस्थितिक निम्नीकरण ने जनजातीय समुदायों के संबद्ध पारम्परिक व्यवसायों को तेजी से घटा दिया है। तथापि, बाग़वानी, समतल खेती, स्थिर खेती, पशु-पालन, रेशम कीट-पालन तथा मधुमक्खी-पालन में एक उछाल आया है। ये जनजातियाँ अपने पारम्परिक व्यवसायों से दूर होती जा रही हैं और किसानों के रूप में स्थापित होती जा रही हैं एवमेव उन्होंने अपनी आय वृद्धि व उत्पादकता बढ़ाने के लिए नए धन्धे हाथ में लिए हैं। जनजातीय अर्थव्यवस्था में हम विविधीकरण के प्रमाण भी पाते हैं। सरकारी व निजी नौकरियों, स्वरोज़गार, आदि में लगे जनजातीय लोगों की संख्या में तीव्र उछाल आया है। अनेक पारम्परिक शिल्पकर्म, ओझल हो चुके हैं और विशेषतः कताई पर दुष्प्रभाव पड़ा है। उससे सम्बन्धित कार्यों जैसे बुनाई, रंगाई व छपाई पर भी ऐसा ही दुष्प्रभाव पड़ा है। खाल व पशु-चर्म कार्य ने परिवर्तन झेला है; प्रस्तर नक्काशी में कमी आयी है। लेकिन खनन व राजगिरी में लगी जनजातियों की संख्या तेजी से बढ़ी है जो एक नई गतिशीलता का संकेत देती हैं।

ये जनजातियाँ शिल्पकार भी हैं। नक्काशी व देह गुदाई में जनजातीय लोगों के बीच विद्यमान कलाओं व शिल्पों के ही रूप आते हैं। हाल के वर्षों में कला की अन्य मुख्य विधाओं के रूप में भित्ति चित्रकला व चित्रांकन उद्गमित हुए हैं। वास्तव में वार्लियों, राबड़ियों व राठवों व अन्य के बीच एक वाणिज्यिक स्तर पर कला की इन विधाओं का एक महत्त्वपूर्ण पुनरुत्थान हुआ है। बास्केत्री में सबसे अधिक संख्या में जनजातियाँ हैं, जिनमें वे आती हैं जो बुनाई, कढ़ाई व भण्डकर्म में संलग्न हैं।

विकास प्रक्रियाओं के प्रभाव, विशेषतः शिक्षा ने जनजातियों के बीच उद्यमियों, व्यापारियों, प्रशासकों, अभियन्ताओं/ डॉक्टरों तथा रक्षा-सेवा सदस्यों के एक नए सामाजिक स्तर को जन्म दिया है।

विकास प्रक्रिया ने जनजातीय समाज में विभाजन भी पैदा किया है। विषमताएँ बढ़ी हैं। संसाधनों व जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण खोने के साथ ही जनसांख्यकीय वृद्धि पर राष्ट्रीय औसत की अपेक्षा जनजातियों के बीच अधिक उच्च रही है, जनजातियों के बीच ग़रीबी भी नानाविध बढ़ी है। उनमें से कुछ जनजातियों अथवा कुछ वर्गों को छोड़कर, जनजातीय लोग देश की जनता के सर्वाधिक पिछड़े व दरिद्रतम वर्गों में ही आते हैं।

26.3 भारत में सामाजिक एवं राजनीतिक आन्दोलन

26.3.1 उपनिवेशपूर्व काल

उपनिवेशपूर्व काल में कुछ जनजातियों ने उत्तर-पूर्व से लेकर, मध्य भारत होते हुए पश्चिमी व दक्षिणी भारत तक फैले अपने अधिकार क्षेत्र में राज्य स्थापित किए। जहाँ उन्होंने राज्य स्थापित नहीं किए, भरपूर स्वायत्तता व स्वतंत्रता कायम रखते हुए वे क्षेत्रीय राजनीतिक व्यवस्था में समाहित कर लिए गए। कहीं-कहीं जनजातियाँ के औपनिवेशिक शासन से पूर्व अशांत स्थितियों में होने की भी खबर थी। उदाहरणार्थ, एक रिपोर्ट के अनुसार, पश्चिमी भारत में गोंड, भील, कोली, जैसी जनजातियाँ अशांत स्थिति में थीं। यह सब आमूल रूप से औपनिवेशिक शासन के दौरान बदल गया जबकि जनजातीय स्वायत्तता और भूमि, वन, खनिज, आदि जैसे संसाधनों पर जनजातियों के नियंत्रण पर पहला बड़ा आघात देखा गया। उपनिवेशवाद ने जनजातियों अथवा वे जिन्होंने उन्हें समाहित किया था, द्वारा बनाए गए उपनिवेशपूर्ण राजनीतिक ढाँचों का विध्वंस भी देखा। इसी कारण, जनजातियाँ आयेदिन विद्रोह करती रहीं तथा औपनिवेशिक काल में उन्होंने किसी भी अन्य समुदाय की अपेक्षा एक वृहत्तर स्तर पर आन्दोलन व विरोध-प्रदर्शन आयोजित किए।

प्रथम चरण (1795-1860)

ब्रिटिश शासन के उदय और स्थापना के दौरान जनजातीय विद्रोहों का पहला चरण (1795-1860) दृष्टिगोचर हुआ जिसका वर्णन प्राथमिक विरोध आन्दोलनों के रूप में किया जा सकता है। संथाल विद्रोह (1855-6) ने कृषिक विद्रोह व पुनरुत्थान द्वारा संकेतित एक अन्तरवर्ती चरण का प्रतिनिधित्व किया।

उत्तर-पूर्व में भी जनजातीय क्रांतियों के उप-चरण इसी प्रकार सीमांकित किए जा सकते हैं। गारो और हजोंग जो अपने ज़मींदारों की नादिरशाही से मुक्त होने के लिए ब्रिटिश शासन के आगे झुक गए थे, पगाल पंथी के प्रभाव में आ गए। उनका मुखिया, टीपू जो दमित कृषि-वर्ग का नेता बन गया था, ने एक साम्राज्य स्थापित किया और गिरफ़्तार कर लिया गया। खासी उन मैदानी इलाकों में लूटपाट में लगे थे जहाँ उन्होंने 1787 से 1825 तक धावा बोले रखा। सिंगफो, मिशनी, लुशैस, खम्पती और दफ़्लाओं ने मैदानी इलाकों में धावा बोला और लोगों को मार डाला। खासियों ने सड़क-निर्माण का विरोध किया, और तिरोत सिंह के नेतृत्व में खासी सरदारों के परिसंघ ने उनके देश पर कब्ज़ा किए जाने हेतु ब्रिटिश प्रयास क़ा प्रतिरोध किया। ब्रिटिशों ने लुसही, मिशमी आदि को दण्डित करने के लिए अभियान दल भेजे। मध्य भारत में, यह चरण 1857 में असम के मणिराम दीवान और सारंग राजा की क्रांति के साथ ही समाप्त हो गया।

द्वितीय चरण (1860-1920)

दूसरा चरण (1860-1920) उपनिवेशवाद के गहन काल के साथ ही शुरू हुआ, जहाँ जनजातीय व कृषि-वर्ग अर्थव्यवस्थाओं के भीतर व्यापारिक पूँजी, उच्चतर लगान-भार, आदि की कहीं अधिक

गहरी घुसपैठ देखी गई। उच्चतर जनजातियों के शोषण को प्रबल कर दिया। इसके परिणामस्वरूप, अनेक जनजातियों को शामिल कर, मुल्कुइ लराई, फितूरी, मेली, उलगुलन और भूमअकाल जैसे इस प्रकार के उद्‌बोधक देशज शब्दों द्वारा अभिव्यक्त, बहुसंख्य आन्दोलन तो हुए ही बल्कि एक कहीं अधिक जटिल प्रकार का आन्दोलन भी हुआ, जिसने कृषिक, धार्मिक व राजनीतिक मामलों के एक विलक्षण घल्लमेल का भी प्रतिनिधित्व किया। एकेश्वरवाद, शाकाहारवाद, स्वच्छता, मद्य-निषेध, आदि के अपने मतों के साथ भक्ति आन्दोलन जनजातीय क्षेत्रों में सक्रिय भिखारियों (गोसाईं), शिल्पकारों और कृषकों द्वारा शुरू किया गया। ईसाई धर्म भी आया और उसी के प्रभाववश एक नया जनजातीय मध्यवर्ग उद्‌गमित हुआ, जो शिक्षित, सचेत व स्वाभिमानी था। ईसाई धर्म व भक्ति आन्दोलन, दोनों ने सहस्त्राब्दिक आन्दोलनों के उदयार्थ इस चरण में योगदान दिया। जनजातीय आन्दोलनों ने विविध सोपानों में, अपनी व्यवस्था पर धावों और अपनी गढ़ी जाती इमारतों को टेक देने के प्रयास के विरुद्ध जनजातीय प्रतिरोध का प्रदर्शन किया। उनका अनुसरण सामाजिक-धार्मिक अथवा पुनर्जागरण आन्दोलनों द्वारा किया गया, नामतः, संथालों के बीच खेरवाड़ आन्दोलन (1871-80), मुण्डा व ओराओं के बीच 'सरदार' पुनर्जागरण आन्दोलन (1881-90), छोटानागपुर में ताना 'भगत' और हरिबाबा आन्दोलन, मध्यप्रदेश में 'भगत' आन्दोलन तथा भील पुनर्जागरण, जो नए नई व्यवस्था बनाने हेतु जनजातीय आग्रह की अभिव्यक्ति से परिपूर्ण थे। आन्दोलन की ये दो पंक्तियाँ, इस उप-महाद्वीप की लम्बाई और चौड़ाई के माध्यम से विस्मयकारी समानताएँ सामने लायीं– चुनौती देती ताकतों के प्रायः उसी जटिल विचार के प्रत्युत्तर की आधारभूत एकता।

बिरसा मुण्डा (1874-1901) द्वारा चलाया गया आन्दोलन इस चरण के सामाजिक-राजनीतिक आन्दोलनों में सर्वाधिक प्रसिद्ध है क्योंकि यह आन्दोलन मुण्डा राज स्थापना और स्वाधीनता की फ़िराक में था। इसके सामाजिक-धार्मिक पहलुओं में, यह किसी दूसरे भगत आन्दोलनों की भाँति ही था, फ़र्क था तो यह कि उक्त आन्दोलन ईसाई धर्म से भी प्रभावित था, और इसने मुण्डा विचारधारा व विश्व परिदृश्य को बनाने के लिए हिन्दू व ईसाई दोनों ही वाग व्यवहारों का प्रयोग किया। क्रांतिकारियों ने पुलिस थानों व कार्यालयों, गिरजाघरों व मिशनरियों पर हमला किया। यद्यपि दिकुओं (बाहरियों) के विरुद्ध शत्रुता का एक अन्तः प्रभाव था, कुछेक विवादास्पद मामलों को छोड़कर, उन पर कोई खुल्लमखुल्ला प्रहार नहीं हुआ। विद्रोह को कुचल दिया गया, परन्तु इससे मिले सबक छोटानागपुर किराएदारी कानून पास करने में कबूल किए गए। इसने मुण्डा भू-व्यवस्था की रक्षा करने, जनजातीय भूमि हस्तांतरण निषेध करने, भूमि का पुनः दावा करने के लिए जनजातीय अधिकार को मान्यता दिलाने और एक नई प्रशासनिक इकाई बनाने का प्रयास किया। उनकी क्रांति के मेवाड़ दरबार पर एक 21-सूत्रीय समझौता मसविदे पर हस्ताक्षर करने के लिए दवाब डाला।

तृतीय चरण (1920-1947)

तीसरे चरण (1920 से 1947) में, जनजातीय आन्दोलनों में हम तीन रुझान देखते हैं। पहला रुझान है – महात्मा गाँधी के नेतृत्व वाले स्वतंत्रता संघर्ष का प्रभाव, जहाँ उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन और पुनर्निर्माण कार्यक्रम में प्रमुख जनजातीय समूहों में से कुछ को लामबन्द किया। दूसरे रुझान का प्रतिनिधित्व भूमि व वन पुनरुत्थान तथा जनजातीय समाज के सुधार पर केन्द्रित आन्दोलनों द्वारा किया जाता है। तीसरा रुझान, जनजातीय मध्यवर्ग के नेतृत्व में स्वायत्तता, राज्य का दर्ज़ा, पृथक्करण और स्वाधीनता की खोज करते आन्दोलनों के उदय द्वारा प्रतिबिम्बित होता है।

हम संक्षिप्त में तीन आन्दोलनों का वर्णन कर सकते हैं : ओराओं के बीच तानाभगत आन्दोलन, हो एवं सम्बद्ध जनजातियों के बीच हरिबाबा आन्दोलन, और गोंड के बीच राजमोहिनी आन्दोलन। मध्यकालीन 'भक्ति' परम्परा में डूबे हिन्दू कृषि-वर्ग के लिए महात्मा एक 'भक्ति' प्रचारक की भाँति

प्रतीत हुए, और जनजातीय लोगों के लिए एक भगत की भाँति। सर्वाधिक प्रसिद्ध भगत आन्दोलन था – तानाभगत आन्दोलन जो एक सहजवादी आन्दोलन की तर्ज पर शुरू हुआ। जबकि जनजातियों ने राष्ट्रीयवादी कार्यक्रम को स्वीकार कर लिया राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्यधारा में शामिल हो गए, उन्होंने आर्थिक व सांस्कृतिक शोषण के खिलाफ प्रतिरोध किया। स्वराज का अर्थ ब्रिटिश शासन से मुक्ति मात्र नहीं था, बल्कि दिकुओं, साहूकारों, ज़मींदारों व सामंत-उच्चाधिपति के दमन से मुक्ति भी था।

राज़सी राज्यों में जहाँ ज़नजातीय लोग अपेक्षाकृत अधिक पिछड़े थे, उन्हें लामबंद कर सामन्ती व्यवस्था के विरुद्ध प्रजा मण्डलों ने आन्दोलन शुरू किए। जिन जनजातियों ने खासकर इन आन्दोलनों का प्रत्युत्तर दिया, वे थीं – भील, गोंड, खारवाड़, मुण्डा और खोण्ड। उनमें से अधिकांश देश में सम्पत्ति, निजी या सामुदायिक, की द्योतक थीं, जिस पर औपनिवेशिक व्यवस्था और सामन्ती शोषण का ख़तरा मंडरा रहा था। कृषिक विषय जिन्होंने उन्हें उत्तेजित किया, थे – *बेगार* अथवा *वेथ* (बिना भुगतान अनिवार्य श्रम), *रसाल* अथवा *मगान* (आगन्तुक अधिकारियों हेतु रसद की मुफ़्त आपूर्ति), और लगान के अलावा अन्य बलात् करों (अबलाओं) की माँग।

दो स्वदेशी आन्दोलन जनजातीय संस्कृति के विशुद्ध व मौलिक तत्त्वों को पुनर्जाग्रत करने के प्रयास में लगे थे। 1889 के आरम्भ होते-होते खासी जीवन-शैली के संरक्षणार्थ सैंग खासी, खासियों के एक सामाजिक-सांस्कृतिक संगठन, की स्थापना हो चुकी थी। इसी मंच के माध्यम से ग़ैर-ईसाई खासियों ने कुल संबंध की उस प्राचीन व्यवस्था को दृढ़ करने का प्रयास किया है जो बृहद्स्तर पर धर्म-परिवर्तन – खासी से ईसाई बनाने, से भंग हो गई थीं। दूसरा आन्दोलन, ज़ेलीआंगग्रोंग आन्दोलन, जादूनांग के तत्त्वावधान में एक धार्मिक-सांस्कृतिक आन्दोलन के रूप में शुरू हुआ। यह एक ऊँचे राजनीतिक सुर में ढल गया और राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन से संबंध स्थापित कर लेने वाला एकमात्र आन्दोलन बन गया। गैडिनलियू के नेतृत्व में यह प्रबल रूप से राष्ट्रवादी रहा, उसने जनजातीय भाई-चारे को प्रोत्साहित किया और ज़ेलीआंगग्रोंग लोगों के लिए एक पृथक् प्रशासनिक इकाई बनाने की माँग की जो कि मणिपुर, असम और नागालैण्ड के निकटवर्ती क्षेत्रों में निर्वाचक जनजातियों द्वारा आवासित राज्यक्षेत्रों में से ही बनाई जानी थी, और जिसके लिए ये राज्य सहमत नहीं हुए।

बोध प्रश्न 1

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) सैंग खासी क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) 1920-47 के दौरान भारत में जनजातीय आन्दोलनों की मुख्य प्रवृत्तियों को पहचानें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

26.3.2 उपनिवेशोपरांत काल

उपनिवेशोपरांत काल में, शिक्षा व रोज़गार में प्रगति, राजनीति में प्रतिनिधित्व तथा सत्ता में भागीदारी, और जनजातीय मध्यवर्ग के एक भाग की समृद्धि के बावजूद, जनजातीय लोगों की भू-संसाधन दोहन की उत्कटता और उनका उपांतकरण, आप्रवासन अथवा दारिद्र्य देखा गया। इसी कारण, इस काल में पहचान, समानता, अधिकार-प्रदान, स्व-शासन, आदि विषयों पर केन्द्रित बड़ी संख्या में आन्दोलनों का उदय देखा भी गया। जनजातीय आन्दोलन सामान्यत: दो वर्गों में बाँटे जा सकते हैं :

- स्वायत्तता, स्वाधीनता, राज्य-निर्माण, और स्व-शासन हेतु राजनीतिक आन्दोलन।
- कृषिक व वनाधारित आन्दोलन – भूमि व वन जैसे संसाधनों पर नियंत्रण हेतु आन्दोलन अथवा भू-स्वत्व-अंतरण व विस्थापन के विरुद्ध तथा वन में प्रतिबंधों के विरुद्ध और वन संरक्षण हेतु दिशानिर्देशित आन्दोलन।

राजनीतिक आन्दोलन

स्वतंत्रोत्तर काल में गोंडों और भीलों के बीच राजनीतिक स्वायत्तता हेतु संसाधनों की अभिव्यक्ति के प्रयास हुए। राज्य पुनर्संगठित आयोग के समक्ष प्रस्तुत किए गए एक ज्ञापन-पत्र में, राजा नरेश सिंह जैसे राज गोंड नेताओं ने छत्तीसगढ़ तथा रेवा क्षेत्र में विदर्भ के निकटवर्ती जिलों के जनजातीय क्षेत्रों में से काटकर निकाले जाने वाले आदिवासियों हेतु एक पृथक् राज्य निर्माण की माँग की। 19 मई, 1963 में नारायण सिंह उकी, गोंडवाना आदिवासी सेवा मंडल के प्रधान, ने गोंड तथा छत्तीसगढ़ तथा महाराष्ट्र में विदर्भ के निकटवर्ती ज़िलों के अन्य जनजातीय क्षेत्रों को सम्मिलित कर, गोंडवाना राज्य के निर्माण की माँग दोहराई।

यह बिहार के छोटानागपुर-संथाल परगना क्षेत्र में ही था कि जहाँ राजनीतिक स्वायत्तता और एक राज्य निर्माण हेतु आन्दोलन वास्तव में आगे बढ़ा। 1949 में, आदिवासी महासभा समाप्त कर दी गई और वह एक नए क्षेत्रीय दल, झारखण्ड पार्टी में विलय हो गई। इसके पीछे थे – अतिवादी आन्दोलनों की विफलता और भारतीय संविधान निर्माण के अनुभव। झारखण्ड पार्टी, कम-से-कम, सिद्धांतत: ही, छोटानागपुर के सभी निवासियों के लिए खुली थी। इस प्रकार, आन्दोलन में निर्माणकारी कारक के रूप में नृजातीयता से क्षेत्रवाद के बीच एक संक्रमण काल था। झारखण्ड आन्दोलन व दल के लिए 1952 से 1957 का काल अनेक विध उत्कर्ष काल था, जब वह छोटानागपुर-संथाल परगना क्षेत्र में प्रमुख दल के रूप में उद्गमित हुआ। 1957 में हुए दूसरे आम

चुनावों में, इसका प्रभाव उड़ीसा तक फैलता देखा गया, जहाँ उसने पाँच सीटों पर कब्ज़ा कर लिया और प्रदेश की राजनीति में सत्ता संतुलन बनाए रखा जो कि अस्थिरता की मारी थी। इसने उल्लेखनीय एकता दर्शायी, जनजातीय क्षेत्र में कानून लागू किए, यही हज़ारों लोगों को लामबन्द कर सका और अल्पकाल में ही अनेक विशालकाय जुलूस निकाल सका। साठ के दशकारंभ में इस दल का पतन शुरू हो गया। इसके पतन के निम्नलिखित कारण थे : विकास प्रक्रिया लोगों की संबद्धता; विकास के लिए शिक्षा पर प्रतिस्पर्धा, रोज़गार तथा संसाधनों पर नियंत्रण से उन्नत ईसाई जनजातीय लोगों तथा पिछड़े ग़ैर-ईसाई जनजातीय लोगों के बीच पनपती प्रतिद्वंद्विता; और झारखण्ड से कांग्रेस व जनसंघ को ग़ैर-ईसाई जनजातीय लोगों के समर्थन का विचलन।

छोटानागपुर के औद्योगिक और खनन पट्टी में और 1980 के आम चुनावों के बाद प्रदेश की राजनीति में झारखण्ड मुक्ति मोर्चा एक प्रमुख राजनीतिक शक्ति के रूप में उद्गमित हुआ। अपने दायरे में कृषिक व कामगार वर्गों को शामिल कर इसने अलगाववादी आन्दोलन को विस्तृत आधार प्रदान करने का प्रयास किया। झारखण्ड का वर्णन उसके विचारधारकों द्वारा उस अन्त:उपनिवेश के रूप में किया जाता है जिसका बाहरी व्यक्तियों द्वारा शोषण किया जा रहा हो। यद्यपि क्षेत्र खनिजों के 28 प्रतिशत का विवरण देता है, यह अपने विकासार्थ राज्य के बजट का मात्र 15 प्रतिशत ही प्रयोग करता है। विकास प्रक्रिया स्वयं ही स्थानीय निवासियों की शोषक है और बाहरी व्यक्ति रोज़गार के सभी अवसरों पर कब्ज़ा करने को घुस आए हैं।

उन अनेक परिवर्तनों के माध्यम से जिन्होंने झारखण्ड आन्दोलन को प्रभावित किया, एक पृथक् राज्य हेतु समर्थनाधार का बढ़ना जारी रहा और प्रमुख राजनीतिक दलों को अपने विस्तार में लेते हुए, प्रचण्ड भी हुआ। उन्होंने अस्सी के दशक में क्षेत्रीय ढाँचों को खड़ाकर शुरुआत की। 1980 में प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी ने घोषणा की कि छोटानागपुर एक सांस्कृतिक रूप से भिन्न क्षेत्र है। नब्बे के दशकारंभ में यही बात एक स्वायत्त राजनीतिक प्राधिकार के शब्दों में तब्दील हो गई। 1988 में, भारतीय जनता पार्टी ने क्षेत्रीय पिछड़ेपन का वास्ता देकर 'वनांचल राज्य' गठित किए जाने हेतु स्वयं को वचनबद्ध किया। इस प्रकार, उन दो मुख्य पात्रों ने अपनी भूमिकाएँ ही बदल डालीं जो काफी लम्बे समय से झारखण्ड के विरोध में थे। अस्सी के दशक में, भू तथा वन विषय राष्ट्रीयता, वर्ग तथा नृजाति प्रश्न, जो प्रमुख दलों द्वारा प्राय: उपेक्षित रहते थे, पर ज़ोर देते हुए भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी (मार्क्स०) को छोड़कर सभी वामपंथी दल ने एक पृथक् राज्य हेतु माँग का समर्थन किया। इस प्रकार, जबकि एक ओर झारखण्ड राज्य दृढ़ता से विकसित हो रहा था, नब्बे के दशक में यही बात, खासकर 'भाजपा' द्वारा राज्य-समर्थक दलों हेतु चुनावी फ़ायदों के शब्दों में रूपांतरित हो गई।

'झारखण्ड विषयक समिति' ने एक स्वायत्त शासन स्थापित किए जाने की सिफ़ारिश की। 1993 में झारखण्ड क्षेत्र स्वायत्त परिषद् (जे.ए.ए.सी.) अस्तित्व में आई, लेकिन यह उन लोगों की आकांक्षापूर्ति नहीं कर सकी जो एक सम्पूर्ण राज्य की माँग से कम पर राज़ी हो जाते। 1995 व 1996 में हुए दो आम चुनावों में, एक पृथक् राज्य की वकालत करते अखिल भारतीय दल चुनाव जीत ले गए। 15 नवम्बर 2000 को, 1950 में झारखण्ड पार्टी द्वारा रखे गए एक झारखण्ड राज्य के लक्ष्य को वास्तविक रूप से प्राप्त करते और लगभग एक सौ वर्ष पूर्व, बिरसा मुण्डा द्वारा देखे गए एक जनजातीय राज के सपने को साकार करते हुए, झारखण्ड राज्य एक वास्तविकता बन गया।

उत्तर-पूर्व में राजनीतिक आन्दोलन

क्षेत्र की अनोखी भौगोलिक स्थिति और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की वज़ह से उत्तर-पूर्व में जनजातीय आन्दोलन स्वयं ही एक श्रेणी में खड़े हैं। सत्ता-हस्तांतरण की पूर्व-संध्या पर उत्तर-पूर्वी पहाड़ियों

में राजनीतिक प्रक्रियाएँ अकस्मात् ही शुरू हो गईं जब जनजातीय जनों की एक काफ़ी संख्या और खासी, मिज़ो, गारो आदि के बीच उनके अभिजात्यों का एक बड़ा वर्ग तथा नागाओं के बीच से भी एक वर्ग भारत की संवैधानिक प्रणाली में भाग लेने को राज़ी हो गए। पुरानी जनजातियों ने नए नाम रख लिए, छोटी जनजातियाँ बड़ी जनजातियों में विलय हो गईं, और ये जनजातियाँ एक नई नृजाति-व-राज्यक्षेत्र वाली पहचान बनाने को आपस में मिल गईं। जबकि स्वायत्त परिषदों अथवा राज्य के गठन तक की प्रक्रियाएँ सभी जनजातियों हेतु लगभग एक-सी ही थीं, राष्ट्र-राज्य के साथ उनके संबंध के प्रश्न पर मतभेद थे। नागाओं के वर्ग ने विद्रोह का रास्ता चुना जिसका मिज़ो, मीति और त्रिपुरी आदि ने अनुसरण किया। इन्हीं जनजातियों के अन्य वर्गों ने बाद में अखण्डता को सर्वोपरि रखा। उदाहरण के लिए, नागालैण्ड में अन्गामी, आओ तथा सेमा, जिन्होंने नागा विद्रोह के आरम्भ में प्रमुख भूमिका निभाई थी, ने गंभीर क्षेत्रीय राजनीति का विकल्प चुना। गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र इन जनजातियों के प्रभुत्व वाले क्षेत्र से कोण्यक व लोथा की ओर अब अन्तर्राष्ट्रीय सीमा तक खिसक गया है। विद्रोह पर अब हेमी, और कोण्यक व तैंगखुल आदि का प्रभुत्व है। वास्तव में, इन अल्पसंख्यक जनजातियों के बीच हेमी, और कोण्यक व तैंगखुल आदि के प्रभुत्व वालों के खिलाफ़ एक विरोध रहा है। दूरस्थ व अल्पविकसित मोन व ट्यून्सैंग जिलों के एक संघीय राज्यक्षेत्र में गठन हेतु माँग भी उठी है।

नागा आन्दोलन

नागा आन्दोलन स्वायत्तता अथवा स्वाधीनता हेतु चल रहा प्राचीनतम आन्दोलन है। वर्तमान नागा आन्दोलन का मूल 1918 में कोहिमा हुए एक नागा क्लब के गठन में तलाशा जा सकता है जिसकी एक शाखा मोकोक्चुंग में है। इसमें ईसाई शैक्षणिक संस्थाओं से शिक्षाप्राप्त कोहिमा व मोकोक्चुंग के प्रशासनिक केन्द्रों से आए सरकारी अधिकारियों, और आसपास के गाँवों के कुछ अग्रणी मुखियाओं समेत, मुख्यत: उद्गमित होते नागा आभिजात्य वर्गों के सदस्य हैं। इस क्लब ने नागा हिल्स की सभी जनजातियों को शामिल कर सामाजिक व प्रशासनिक समस्याओं पर विचार-विमर्श किया।

नागा क्लब ने 1929 में सायमन आयोग के समक्ष विज्ञप्ति-पत्र प्रस्तुत कर दिया। इसमें सुधार-योजना से इन पहाड़ियों को बाहर रखने और इन पर सीधे ब्रिटिश प्रशासन को ज़ारी रखने हेतु आग्रह किया गया था। अप्रैल 1945 में, नागा हिल्स ज़िले के तत्कालीन उपायुक्त की पहल पर नागा पहाड़ियों में 'ज़िला जनजातीय परिषद्' बनाई गई जिसने पृथक् जनजातीय परिषदों को एकीकृत किया। 1946 में इस परिषद् का नामकरण 'नागा राष्ट्रीय परिषद्' (एन.एन.सी.) के रूप में कर दिया गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जापानियों ने अपनी अंतिम लड़ाई नागा हिल्स ज़िले के मुख्यालय कोहिमा में लड़ी थी। नागा जनजातियों के राजनीतिक मंच के रूप में 'नागा राष्ट्रीय परिषद्' के गठन को नागा आन्दोलन के आधुनिक चरण की शुरुआत माना जा सकता है। इसने नागा जनजातियों को राजनीतिक एकता का अर्थ प्रदान किया और इसी ने नागा राष्ट्रीयता की संकल्पना को मूर्त स्वरूप दिया।

1946 में, ब्रिटिश सरकार ने नागा हिल्स, तत्कालीन, नेफा (NEFA) क्षेत्र और बर्मा के एक हिस्से को लेकर लन्दन से नियंत्रित एक 'सर्वोच्च-शक्ति उपनिवेश' (क्राउन कॉलोनी) के रूप में एक 'न्यास राज्यक्षेत्र' को गठित किए जाने की योजना का प्रस्ताव किया। नागा राष्ट्रीय परिषद् के शिक्षित नागाओं ने, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की भाँति ही, ब्रिटिश उपनिवेशवाद के इस विचार का त्वरित विरोध किया और घोषणा की कि ब्रिटिश जब भारत छोड़ें, नागा पहाड़ियाँ भी छोड़कर जाएँ।

नागा राष्ट्रीय परिषद् के उद्देश्य स्वायत्तता से लेकर स्वाधीनता तक अनेक चरणों से गुज़र कर विकसित हुए। 27-29 जून, 1947 को परिषद् और असम के तत्कालीन राज्यपाल, स्वर्गीय सर

अक़बर हैदरी के प्रतिनिधित्व में, भारत सरकार के बीच हुए 9-सूत्रीय समझौते में ये प्रावधान थे – भू-स्वत्व-अंतरण पर रोक, प्रशासनिक स्वायत्तता लाना तथा उनके कार्यान्वयन हेतु भारत सरकार का एक विशेष उत्तरदायित्व। 1947 से 1954 तक नागा हिल्स में नागा आन्दोलन शांतिपूर्ण और संवैधानिक रहा। 1947 के अन्त तक आते-आते, नागा राष्ट्रीय परिषद् ने भारतीय संघ से बाहर स्वतंत्रता का पक्ष लेते हुए अपने लक्ष्य बदल दिए।

1954 में, नागाओं ने 'होंग्किन् सरकार' यथा 'स्वतंत्र नागालैण्ड का सर्वसत्ताक जन गणतंत्र' (पीपल'स सॉवरिन रिपब्लिक ऑव फ्री नागालैण्ड) के गठन की घोषणा की। 1954 में हिंसा फैली और भारतीय सेना व क्रांतिकारियों से जुड़ी अनेक घटनाएँ हुईं। जुलाई 1960 में, प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू और एक नागा शिष्टमण्डल के बीच एक 16-सूत्रीय समझौता हुआ। एक अगस्त, 1960 को, प्रधानमंत्री नेहरू ने 'नागालैण्ड' को भारतीय संघ का 16वाँ राज्य बनाए जाने हेतु सरकार के निर्णय की संसद में घोषणा की। अब तक नागालैण्ड में 'भूम्योपरी' (overground) नागा नेताओं का एक गुट उद्गमित हो चुका था, जिन्होंने 'नागालैण्ड राष्ट्रवादी संगठन' (एन.एन.ओ.) बनाया। यह एन.एन.ओ. मुख्यत: उन नेताओं द्वारा बनाया गया था जो नागालैण्ड को राज्य का दर्ज़ा दिलाने में सहायक रहे थे। इसी तर्ज पर, नागालैण्ड लोकतांत्रिक पार्टी उद्गमित हुई। यह उनके द्वारा बनाई गई थी जो एन.एन.ओ. से मतभेद रखते थे और मन में पृथक्वादी भूमिगत गुट के लिए सहानुभूति रखते थे। बहरहाल, 1954 और 1964 के बीच, एक दशक से अधिक, नागा आन्दोलन का उग्रवादी वर्ग भूमिगत रहा। 1968 तक, भूमिगत नेताओं के बीच वार्ताओं के अनेक दौर चले। एक अन्य महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी – 11 नवम्बर, 1975 को 'शिलांग समझौते' पर हस्ताक्षर किया जाना, जिसकी शर्तों के तहत भूमिगत नागाओं ने भारतीय संविधान स्वीकार कर लिया, उन्होंने अपने हथियार जमा कर दिए और भारत सरकार ने बदले में नागा राजनीतिक क़ैदियों को रिहा कर दिया तथा उनके पुनर्वास का वचन दिया। तथापि, जबकि विद्रोह के कोई आसार नहीं थे व हिंसा छोड़कर अधिक से अधिक भूमिगत नागा भूमि पर आ चुके थे और अशांत उत्तर-पूर्व में नागालैण्ड सामान्यत: शांति व स्थिरता का एक नख़लिस्तान रहा था, यह समझौता स्वयं फ़िज़ो व उसके विरोधियों द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया है। ये विरोधी तीन दलों में बँटे रहे : (i) फ़िज़ो-समर्थक फैडरल पार्टी; (ii) माओन् अन्गामी के नेतृत्व वाला गुट – अन्गामी भूमिगत नागा राष्ट्रीय परिषद् के उपाध्यक्ष बन गए जिन्होंने फैडरल पार्टी की नई दिल्ली के साथ पुन: सुलह की निंदा की और ईसाई धर्म से विश्वासघात करने के लिए विद्रोहियों पर दोष लगाया; और (iii) एक तैंगखुल नागा, टी॰ मुइवाह तथा ईसाक स्वू, जिन्होंने नागालैण्ड राष्ट्रीय समाजवादी परिषद्' (एन.एस.सी.एन.) की स्थापना की, के नेतृत्व में माओवाद विचारधारा से ओतप्रोत विद्रोही। भारत-बर्मा सीमाओं पर फ़िज़ो-समर्थक व मुइवाह-ईसाक गुटों के बीच गोली बौछार-युद्ध, आपसी गोली-बारी, क़ातिलाना हमले और अनिर्धार्य मारकाट की घटनाएँ हुईं।

नागा राजनीति के प्रस्तार और संयोजन के पीछे विभिन्न जनजातियों के बीच बदलते समीकरण दिखाई देते हैं। अन्गामी, आओ व सेमा जिन्होंने नागा विद्रोह के आरम्भ में प्रमुख भूमिका निभायी थी, गंभीर क्षेत्रीय राजनीति हेतु आगे आए हैं। गुरुत्वाकर्षण केन्द्र इन जनजातियों के तथा कोण्यक व लोथा के प्रभुत्व वाले क्षेत्र से अंतर्राष्ट्रीय सीमा तक खिसक गया है। विद्रोह पर अब हेमी का प्रभुत्व है, और फ़िज़ो-समर्थक पार्टी के प्रति निष्ठावान कोण्यक व तैंगखुल अन्गामी, खोमैनगन व चाकेसांग की हत्याएँ करते रहे हैं। दरअसल, आओ, अन्गामी, चाकेसांग और लोथा जैसी उन्नत जनजातियों के प्रभुत्व के विरुद्ध इन जनजातियों के बीच प्रत्याक्रमण की भावना रही है।

इस बीच, नागालैण्ड की राजनीति मुख्यधारा व क्षेत्रीय ध्रुवों के बीच भटकती रही है। नागालैण्ड राष्ट्रीय संगठन ने सरकार 1964 से 1975 तक चलाई। 1976 में, एक राष्ट्रीय पहचान बनाने

के लिए यह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में विलय हो गई। नागा इस बीच उत्तर-पूर्व में सर्वाधिक सक्रिय व प्रगतिशील लोगों के रूप में उद्गमित हुए हैं जिन्होंने ग्रामीण विकास के उत्प्रेरक के रूप में ग्राम विकास बोर्ड स्थापित किया है और उस नागा रेजिमेंट को भी ऊपर उठाया है जो कारगिल में लड़ी। और अभी तक, नागा समस्या का अन्तिम समाधान दिखाई नहीं दे रहा, यद्यपि हल ढूँढने के लिए भारत सरकार और विद्रोह गुट के बीच बातचीत अक्सर होती रहती है।

कृषिक व वनाधारित आन्दोलन

उपनिवेशोपरांत काल में जनजातियों के भूमि जैसे संसाधनों के स्वत्व-अंतरण का पैटर्न एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन दर्शाता है। जनजातीय लोग विस्थापित न सिर्फ़ ग़ैर-जनजातियों द्वारा विस्थापित किए जा रहे हैं बल्कि राज्य व उन दूसरे संगठनों द्वारा भी किए जा रहे हैं जिन्हें विकासार्थ भूमि चाहिए। वे अब न सिर्फ़ अन्य लोगों के विरुद्ध गड्ढे में धकेल दिए गए हैं बल्कि उस राज्य के विरुद्ध भी, जिसे वे अपनी भूमि से खुद को विस्थापित किए जाने हेतु प्रमुख हथियार के रूप में देखते हैं।

ये जनजातियाँ न सिर्फ़ उस भूमि की पुनर्प्राप्ति हेतु निवेदन कर रही हैं जो उन्होंने 1963 में लागू हुए 'आंध्र प्रदेश अनुसूचित क्षेत्र भू-हस्तांतरण अधिनियम, 1959' के प्रावधान का आह्वान करते खोई थी, बल्कि उनको आबंटित भूमि के संबंध में स्वत्व-अंतरण और स्वामित्व सौंपे जाने के लिए भी कर रहे हैं। हाल ही में, ये पीपल्स वार ग्रुप (पी.डब्ल्यू.जी.) की भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी (मा. ले.) द्वारा संगठित किए गए हैं। फरवरी 1981 में, वे ज़मीनें जो उनसे ग़ैर-जनजातीय लोगों द्वारा छीन ली गई थीं, पर बलात् फसल एकत्रण करने, साहूकारों के घरों पर छापा मारने और गिरवी रखे गहने आदि को ले भागने की एक अनूठी लहर चली। जनजातीय लोगों को संगठित करने के लिए संचार की पारम्परिक व्यवस्था को पुनर्जाग्रत किया गया। ढोल पीट-पीटकर संकेत इधर से उधर भेजे गए। 6 फरवरी, 1981 को केस्लापुर में हुए 'गोंड दरबार' ने यह घोषणा की कि जनजातीय जन-समस्याएँ अब उबाल पर हैं। गोंडों ने वनोन्मूलन हेतु भूमि-सीमांकन को भी रोका। इससे पूर्व 1977 में, उन्होंने व्यापारियों व साहूकारों के एक समुदाय -- लम्बरदारों, को एक जनजाति के रूप में अनुसूचित किए जाने का पुरजोर विरोध किया था, क्योंकि लम्बरदारों ने जनजातीय लोगों का हमेशा शोषण किया था और एक जनजाति के रूप में उनकी सामाजिक स्थिति गोंडों की ज़मीन पर उनके अवैध कब्ज़े को वैध करार देने में उनकी मदद करती थी। 20 अप्रैल, 1981 को इंदरवल्ली में भा.क.पा. (मा.ले.) द्वारा एक सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सभा पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और जनजातीय लोगों को वहाँ न इकट्ठा होने हेतु राज़ी किया गया। बहरहाल, उन्होंने एक जुलूस निकाला जो एक पुलिस बल से विवाद में पड़ गया। लगभग 15 जनजातीय लोगों की जानें गईं।

26.4 जनजातीय आन्दोलनों के लक्षण और परिणाम

जनजातीय आन्दोलनों का नेतृत्व मुख्यत: उनसे स्वयं ही उद्गमित हुआ है। जबकि प्रथम चरण का नेतृत्व जनजातीय समाज की ऊपरी परत से उभरा, दूसरे का इसकी निम्नतम सीढ़ी से उभरा। संथाल बंधु भूमिहीन थे – बिरसा मुण्डा एक रैयत अथवा एक परजा (फसल-बटाईदार) था और गोविंद गिरी एक हाली था। तीसरे चरण और उपनिवेशोपरांत कालों का नेतृत्व उभरते जनजातीय मध्यवर्ग के सदस्यों द्वारा किया गया, मध्य भारत व उत्तर-पूर्व दोनों में। ये शिक्षित लोग थे जिनमें पादरी, प्रश्नोत्तरवादी, अध्यापक, जन-सेवक, ग्रामीण नेता और व्यवसायी शामिल थे जो अधिकतर धर्मनिरपेक्ष वाग व्यवहार करते थे। समाज-सुधार आन्दोलन का गाँधीवादी कार्यकर्त्ता जैसे बाहरी

व्यक्तियों द्वारा, परजा मण्डल आन्दोलन का मोतीलाल तेजावत जैसे बाहरी व्यक्तियों द्वारा और नागेशिया जैसे कुछ जनजातीय विद्रोहों को "बनियों" द्वारा भी नेतृत्व किया गया।

आन्दोलन के लक्ष्य उपनिवेशपूर्व राजतंत्र की पुनर्प्राप्ति, सेवा कार्यकाल (चुअर), और भूमि (सरदार) और वृक्षारोपण अधिकार से लेकर बाहरी व्यक्तियों के निष्कासन, करारोपण की समाप्ति, समाज सुधार, राजनीतिक स्वतंत्रता, या जनजातीय राज की स्थापना अथवा संवैधानिक और लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रणाली, जनजातीय राज्यों की रचना, समानता लाना और शोषण का अन्त करने तक विस्तीर्ण थे।

आन्दोलनों का सामाजिक व नृजातीय विषयक संयोजन एक एकल जनजाति के नेतृत्व वाले आन्दोलन से लेकर इन जनजातियों की अधीनस्थ जनजातियों व जातियों के संघ, शिल्पकारों व सेवा-समूहों, तक विस्तीर्ण था। अधिकतर आन्दोलन एक जनजाति तक सीमित थे लेकिन प्रथम चरण में इस प्रकार के आन्दोलन, जैसे कोल व संथाल विद्रोह, अनेक जनजातीय व ग़ैर-जनजातीय समूहों पर छा गए। तीसरे व उपनिवेशोपरांत काल में जनजातियों के बीच विस्तृत आधार वाले राजनीतिक दल उभरे, उत्तर-पूर्व तथा मध्य भारत दोनों जगह। अखिल भारतीय जनजातीय मंच शनै: शनै: साठ के दशक में उभरे।

सभी जनजातीय आन्दोलन सीमित स्तर के थे परन्तु उनका प्रभाव उस नीति पर तत्काल पड़ा जिसकी चर्चा ऊपर की गई है। उनके प्रभाव का तथापि लघु- व दीर्घावधि दोनों ही परिप्रेक्ष्यों में अध्ययन करना होता है। शुरू-शुरू में प्राधिकारियों ने जनजातीय मसलों को सम्बोधित करने, उनके संसाधनों के रक्षार्थ कदम उठाने, अधिकारियों तक पहुँच आसान बनाने आदि के लिए तत्काल उपाय करके प्रत्युत्तर दिया। लम्बे समय में औपनिवेशिक नीति ने जनजातियों हेतु पृथक्करण का संस्थाकरण किए जाने के लिए एक ढाँचा तैयार किया–प्रत्यक्ष व परोक्ष शासन तत्त्वों का संयोजन (राजसी राज्यों में, उत्तर-पूर्व आदि में), ग़ैर-जनजातियों हेतु स्वत्व-अंतरण के विरुद्ध भूमि रक्षार्थ और वन में प्रथागत अधिकारों के रक्षार्थ वैधानिक व प्रशासनिक उपायों का संयोजन। तथापि, किस प्रकार का कोई विकास नहीं होना था – मिशनरियों को शिक्षा व स्वास्थ्य सेवाओं का प्रबंध करने को आज़ाद छोड़ दिया गया था। जनजातिजनों की ग़रीबी ऋणग्रस्तता और पिछड़ेपन के विषय में पूछताछ संस्थापित करने और कल्याणकारी उपायों का पहला चक्र चलाने का काम गाँधीवादी कार्यकर्त्ताओं और तीस की दशकांत में कार्यभार ग्रहण करने वाले कांग्रेसी मंत्रिमंडलों पर छोड़ दिया गया।

विद्रोहों के परिणाम, इस प्रकार, सम्पूर्ण जनजातीय भारत के लिए एकसमान नहीं रहे। जबकि ब्रिटिश भारत में उन्होंने जनजातियों के लिए एक इतर-नियम प्रशासनिक व्यवस्था और जनजातीय ज़मीन के रक्षार्थ विशेष कृषिक कानून साधित किए थे, राजसी राज्यों में उनके लिए थोड़ा ही किया गया अथवा करने की अनुमति दी गई। तथापि, राजनीतिक एजेण्ट ने परिवर्तन को प्रोत्साहित करने की बजाय यथापूर्व स्थिति बनाए रखने के लिए हस्तक्षेप ज़रूर किया। यह उभयभाविता औपनिवेशिक व्यवस्था की अभिलक्षक थी।

बोध प्रश्न 2

नोट : i) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिए गए आदर्श उत्तरों से करें।

1) साठ के दशक में झारखण्ड पार्टी के पतन हेतु क्या कारण थे?

.....

2) "क्राउन उपनिवेश" क्या था?

3) शिलोंग समझौता क्या था?

4) भारत में जनजातीय आन्दोलनों के मुख्य उद्देश्य क्या रहे हैं?

26.5 साराश

जनजातीय आन्दोलन अब उन पहचानाधारित आन्दोलनों के रूप में अभिलक्षित किए जा रहे हैं, स्वायत्तता, भूमि, वन, भाषा व लिपि से संबंधित विभिन्न अन्य विषय जिनका शाखा-विस्तार मात्र हैं। यह पहचान ही है जिस पर बल दिया जाता है। पहचान केन्द्र-मंच पर खड़ी होती है। यह बोध-परिवर्तन अब लोगों द्वारा स्थिति की निजी समझ, उनकी पहचान पर बढ़ते खतरे के अवबोधन, सक्रिय पर्यावरणीय तथा देशज लोगों के आन्दोलन, इत्यादि से संभव बना दिया गया है। जनजातीय आन्दोलन अब सत्ता संबंधों, सत्तार्थ छीना-झपटी, किसी क्षेत्र में विभिनन समुदायों के बीच समीकरण की खोज के संदर्भ में रखकर देखे जा रहे हैं। अन्य समुदायों की भाँति, ये जनजातियाँ भी राजनीतिक समुदायों के रूप में उभरी हैं।

जनजातीय आन्दोलन किसी एक निदर्श से सम्बन्धित अब नहीं माने जाते। जटिल सामाजिक स्थितियों से निकलकर उठ खड़े होते आन्दोलन अब निदर्शों व विशेषताओं के एक संयोजन के रूप में लिए जाते हैं। ऐसी ही हैं हेतुक और प्रक्रियाएँ, जिनको अब अन्तर्जातीय व बहिर्जातीय– संसाधनों, संस्कृति व पहचान से संबंधित विषयों के एक संयोजन के रूप में देखा जाता है।

26.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

सिंह, के० एस० (सं०), *ट्राइबल मूवमेण्ट्स इन् इण्डिया*, खण्ड 1 व 2, मनोहर, दिल्ली, 1982-83।

शाह, घनश्याम (सं०), *सोशल मूवमेण्ट्स एण्ड दि स्टेट*, सेज पब्लिकेशन इण्डिया, नई दिल्ली, 2001।

26.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) यह खासियों का एक सामाजिक-सांस्कृतिक संगठन था, जो 1889 में स्थापित हुआ। यह बृहद् स्तर पर खासियों द्वारा ईसाई धर्म अपनाए जाने के विरुद्ध खासी जीवन-शैली की रक्षा पर· अभिलक्षित था।

2) जनजातीय आन्दोलन की मुख्य प्रवृत्तियाँ थीं :

   i) प्रथम प्रवृत्ति : भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव और इसमें जनजातियों की भागीदारी।

   ii) भूमि व वन से संबंधित जनजातीय आंदोलन और जनजातीय समाज में सुधारार्थ आंदोलन का सम्मिलन।

   iii) स्वायत्तता, राज्य का दर्ज़ा, पृथक्करण और स्वाधीनता की खोज में आंदोलन का उदय, और जनजातीय मध्यवर्गों का नेतृत्व।

बोध प्रश्न 2

1) कारण निम्नलिखित थे

   i) निवास प्रक्रिया में जनजातियों का आवेष्टन।

   ii) विकासार्थ शिक्षा, रोज़गार और संसाधनों पर नियंत्रण को लेकर प्रतिस्पर्धा से उभरी उन्नत ईसाई जनजातियों और पिछड़े ग़ैर-ईसाई जनजातियों के बीच प्रतिद्वन्द्विता।

   iii) ग़ैर-ईसाई जनजातियों के समर्थन का झारखण्ड से कांग्रेस और जन-संघ को हस्तांतरण।

2) यह ब्रिटिश सरकार द्वारा सुझाया गया एक प्रस्तावित "न्यास राज्य क्षेत्र" था जिसमें नागा हिल्स, तत्कालीन नेफ़ा (NEFA) क्षेत्र और "क्राउन कॉलोनी" नामक बर्मा का एक हिस्सा शामिल थे। यह लन्दन से नियंत्रित होना माना गया था। इसका नागाओं और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा विरोध किया गया।

3) भूमिगत नागाओं और भारत सरकार के बीच यह एक समझौता था जिस पर 11 नवम्बर, 1975 को हस्ताक्षर किए गए। इस समझौते की शर्तों के तहत नागाओं ने भारत का संविधान स्वीकार कर लिया, अपने हथियार जमा कर दिए। भारत सरकार ने नागा राजनीतिक क़ैदियों को दिया और उनके पुनर्वास का वचन दिया।

4) जनजातीय आन्दोलनों के मुख्य उद्देश्यों में शामिल थे : उपनिवेशपूर्व राज्य, सेवा कार्यकाल, भूमि, वृक्षारोपण अधिकार, बाहरियों का निष्कासन, समाज-सुधार, करारोपण की समाप्ति, आदि।